# हम अहनाफ

**और हमारे अक़ाइद**

**बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम**

न हम्दुहु व नुसल्लीअला रसुलिहिल करीम.......................... व बअद। मैं ''तहकीकुल इस्लाम'' अपने अकाबिर की तरह फुरूआत मैं मुकल्लिद हुँ मुक्तदा ए ख़ल्क इमामे आज़म इमाम अबु हनीफ़ा हजरत नौमान इब्ने साबित रजि. का और उसूल और एतेक़ादात में पैरवी करता हूँ – इमाम अबुल हसन अशअरी और अबु मन्सूर मातुरीदी रजि. की। साथ ही तरीक़ा ए सूफ़िया में मुझे इन्तेसाब हासित है सिलसिला ए आलिया तरीक़ा ए चिश्तिया, कादरिया, नक़्शबन्दीया और सहरबर्दीया से।

अल्हम्दुलिल्लाह! बचपन ही से घर में दीनी माहोल पाया जिसकी वज़ह से मजाराते औलिया की जियारत करने और उनकी कब्रों से फैज हासिल करने का शौक लगा और तबलीग़ी जमाअत के चिल्लों और बरकत के पंज वक्ता नमाजें अदा करने की आदत बनी।

जिन्दगी ठीक–ठाक गुजर रही थी मगर नसीब अपना काम कर गया और ज्यादा कमाने की चाह मुझे सऊदी अरब ले गई। आठ घन्टे काम करने के बाद काफी वक्त फिरी मिलता। मेरे अक्सर साथी टी वी देखने या ताश खेलने में मसरूफ हो जाते और मै बौरियत मेहसूस करता रहता। अल्लाह की महरबानी से ऐसे वक्त मेरी कम्पनी का एक साथी मेरे लिए वक्ती फरिश्ता बन कर आया। उसने मुझे कुरआन पढ़ने को दिया जिसमें कुरआन का तरजुमा व तफसीर भी थी। अब से पहले मैंने कुरआन तरजुमें के साथ नही पढ़ा था। जल्दी ही मैंने कुरआन खत्म कर लिया मैरे इस शौक को भांप कर उसने हदीस की कुछ किताबें जैसे – बुखारी, मुस्लिम, नसाई और अबुदाऊद बग़ैरा एक–एक करके पढ़ने के लिये मुझे दी। मेरा वक्त आसानी से गुजरने लगा। मैरा दीनी इल्म भी बढ़ा। अब मैरा वक्त दीनी किताबें पढ़ने, समझने में गुजरता। तीन साल कब गुजर गये पता भी नही चला। तीन साल बाद जब 6 माह की छुट्टी पर वतन वापस आया तो एक दिन अपने इलाक़े के मौलवी साहब से जिनसे मेरी अच्छी सलाम दुआ थी। अपने इस तरह इल्म हासिल करने का जिक्र किया उम्मीद यह थी कि वो खुश होंगे और मुझे दुआऐं देंगे लेकिन ऐसा कुछ न हुआ बल्कि जुबाने मुबारक से इर्शाद फरमाया तो यह कि तुम क्या समझों? कुरआर औ हदीस को। ''मियां कुरआन समझने के लिये 72 उलूम की जरूरत पड़ती है और हदीस पढ़नाउलेमा का काम है। अगर तुम इन्हें पढ़ोगे तो गुमराह हो जाओगे। फिर थोड़ा नर्म हुये और यह नेक मशवरा मुझे दिया कि तुम फ़िक्ही किताबें पढ़ों इससे तुम्हे फायदा होगा। साथ ही यह मेहरबानी भी की मुझे दुर्रे मुख्तार, अकाइद उलैमा ए देवबन्द शमाइमे इमदादिया, वगैरा कुछ मुफीद किताबें पढ़ने के लिये दी। मैं थके कदमों से ये सोचते हुये घर को चला कि अल्लाह तो कुरआन में यह फरमाता है ''हमने कुरआन को समझने के लिये आसान बनाया है, तो कोई है जो इससे नसीहत हासिल करें।'' (कमर–आयत– 17,22,32,40) दूसरे यह के अब तक मै यही सुनता समझता आया था कि कुरआन व हदीस का इल्म रखने वाला आलिम कहलाता है। मगर मौलवी साहब ने यह क्या फरमाया कि पहले आलिम बनों फिर हदीस पढ़ों? अल्लाह ही जाने क्या पढ़कर आलिम बना जाता है? खैर यह सोचकर दिल को समझा लिया कि मौलवी साहब ने कहा है तो सच ही होगा। फिर जैसे–तैसे किताबों का बोझ उठाये मैं घर पहुँचा।

फिक्ह हनफी की मशहूर किताब ''दुर्रे मुख्तार'' के मुतालेअ के दौरान जब जिल्द एक सफ़ा 41 पर पहुँचा तो इमामे आजम की अजमत का क़ायल हुये बिना न रह सका। लिखा था ''उन्होने 40 साल तक इशा के वुज़ू से फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी। जिन्दगी में 55 हज किये और 100 मर्तबा अल्लाह तआला का ख्वाब में दीदार किया ''मुझे तो लगता है कि यह इमामे आजम रजि. की करामत थी। लेकिन शैताने लईन में दिल में वसवसा डाला कि कुतुबे अहादीस में तो कोई रिवायत ऐसी नही मिलती कि नबी सल्ल. ने कभी 40 दिन भी इशा के वुज़ू से फज्र की नमाज पढ़ी हो। आप सल्ल. ने हज भी एक ही किया मगर कुरबान जाऊं इमामे आजम की मशक्कत और इबादत पर कि अपने 70 साला जिन्दगी में (अखीर 5 साल जैल में रहने के बावजूद) 55 हज किये वह भी कूफा से आकर। रहा सौ बार अल्लाह का दीदार करना तो यह बात कुछ अजीब सी लगी इस वजह से कि हमारी फिक्ह हनफी ही की एक मुअतबर किताब ''फ़तावा काजी खान'' की चौथी जिल्द में लिखा है ''जो शख्स यह कहें कि मैं ने अल्लाह को ख्वाब में देखा है तो वह शख्स और बुतों की पूजा करने वाला बराबर है। दुर्रे मुख्तार के इसी सफे 41 पर आगे लिखा है ''इमामे आजम ने अपने अखीर (55 वें) हज में खाना ए काबा के अन्दर दो रकाअतें इस तरह पढ़ी की पहली रकाअत में दाये पैर पर खड़े रहकर आधा कुरआन खत्म किया।फिर दूसरी रकअत में बाएं पैर पर खड़े रह कर बकिया आधा कुरआन खत्म किया। रूकूअ व सूजूद के बाद जब सलाम फैर चुके तो अपने रब से दुआ व मनाजात की तभी बैतुल्लाह के एक तरफ से (ग़ैबी) आवाज आई ''यकीनन हमने तुझे बख्श दिया और उन लोगो को भी जिन्होने तुम्हारी पैरवी की उन लोगो में से जो कयामत तक तैरे मजहब पर होंगे।'' ''अशरा–मुबश्शरा'' को तो अल्लाह तआला ने नबी सल्ल0 की जुबानी जन्नत की बशारत दी और हमारे लिये सीधे ग़ैब से निदा आई। सच हम अहनाफ कितने खुशनसीब है कि इमामे आजम रजि. के खाना ए काबा में 2 रकाअते (मखसूस तरीके पर) अदा करने के सबब बख्श दिये गये। जबकि इमामे आजम जैसा अकीदा भी हमारा नही है। हमारे बुजुर्गों को अल्लाह जाने क्या कमी या खराबी नजर आयी इमामे मोहतरम के अकीदें में जो उसे न अपनाया। शायद अबुल हसन अशअरी और अबु मन्सूर मातुरीदी रजि. इमामे आजम से बेहतर और अफजल हो ?

एक यह बात समझ में नही आती कि जब हम बख्शे बख्शाऐं है तो क्यों हमारें उलेमा हमें मुख्तलिफ फिर्कों में बांटते है और एक–दूसरे पर कुफ्र के फत्वें दागते है? और यह भी कि क्यों हम फातिहा, तीजा, सातवां, दसवां, बीसवां, चालिसवां, बरसी और कुरआन ख्वानी वग़ैराह पर फिजूल पैसा खर्च करते है। क्यों शअबान कि 15 वीं शब कब्रिस्तानों में मारे–मारे फिरते हैं और रत जगा करते है। क्या हमें अपने बख्शे जाने का यकीन नही................... कितना अच्छा होता अगर नबी ए मोहतरम सल्ल. ने भी एस तरह दो रकअते खाना ए काबा में पढ़ ली होती तो (शायद) सारे मुसलमान चाहे वो किसी भी फिर्के के होते, बख्श दिये जाते और नबी सल्ल. को ''रोज़े कयामत'' गैर हनफी गुनाहगार मुसलमानों की शफ़ाअत न करना पड़ती और न ही बार–बार अल्लाह के हुजूर सजदा रेज होना पड़ता।

अनस बिन मालिक रजि. ''हदीसे शफ़ाअत के बारे में बयान करते है कि अल्लाह के रसूल सल्ल. ने फरमाया मैं अपने रब से हाजिरी की इजाज़त मागूंगा। इजाज़त देने के बाद अल्लाह ताआला मुझे अपनी हम्द व सना के वह कलिमें सिखाऐगा जो इस वक्त में नही जानता। मैं उन कलिमात से हम्दों सना बयान करूंगा और सजदें में गिर पडूंगा। इर्शाद होगा ऐ मोहम्मद सल्ल.। सर उठाओ। बात कहो सुनी जाऐगी। ऐ! मुहम्मद सल्ल. सर उठाओ, बात कहो सुनी जायेगी। मैं अर्ज़ करूँगा–ऐ मेरे रब! मेरी उम्मत! मेरी उम्मत! अल्लाह फरमायेगा– जाओ और जहन्नुम से उन लोगों को निकाल लाओं जिन के दिल में जौ के बराबर ईमान है। मैं जाऊंगा और ऐसा ही करूंगा। फिर दुबारा सजदे में गिर पडूंगा फिर इर्शाद होगा। उन लोगों को जहन्नुम से निकाल लाओं जिन के दिल में चीटीं या राई के बराबर ईमान है। फिर तीसरी दफा भी यही सब होगा और इर्शाद होगा जहन्नुम से उन लोगों को निकाल लाओं जिनके दिल में राई के दाने से भी कम ईमान हैं। मैं उन्हें भी निकाल लाऊंगा। (लु लु वल मरजान– हदीस नं. 119) औफ बिन मालिक अशजई रजि. की बयान कर्दा हदीस में है कि नबी सल्ल. ने फरमाया ''मेरी शफ़ाअत हर उस शख्स के लिये होगी जिसने मरते दम तक अल्लाह के साथ किसी को शरीक नही ठहराया।'' (तिरमिजी–2680)

पता चला कि नबी सल्ल. के तरीके पर नमाज, रोजा, जकात और हज अदा करने वाले की बख्शिश मशरूत है नबी सल्ल. के बतलायें अकीदा–ए–तोहीद के साथ मगर कुरबान जाऊं इमाम–ए–आजम रजि. की शाने अजमत पर कि बस फुरूआत (मसाइल) में उनकी पैरवी भर कर लेने से हम सब अहनाफ बख्श दिये गये।

दुर्रे मुख्तार ही मै जिल्द एक सफा 31 पर लिखा है। ''हमारे असहाबे फिक्ह (हनफी) की किताबों का मुताअला करना गो उस्ताद से न सुना हो तहज्जुद की नमाज से अफजल है।'' बल्कि रात भर नवाफिल पढ़ने से अफजल है। अल्लाह–अल्लाह क्या शान है हमारी फिक्ह हनफी की ? कि कुरआन व हदीस से कौरे रहकर भी हमारे लिये फायदा ही फायदा है। सिर्फ हनफी फिक्ह की किताबों का मुताअला कर लेने से रात भर नवाफिल पढ़ने का सवाब हम अहनाफ पाते है। यह सब हमारे अकाबिर उलेमा इकराम के इस ऐतेराफ पर है कि ''जब हमसे हमारे मजहब–ए हनफी और हमारे मुखालिफ मजाहिब शाफई, मालकी और हम्बली के बारे में पूछा जाऐगा कि कौन हक पर है तो उसके जवाब में हम कहेंगे कि मजहबे हनफी सही है। जो खता के एहतेमाल से खाली नहीं और हमारे मुखालिफ मजाहिब गलती पर है। मगर सही होने का ऐहतेमाल रखते है। (दुर्रे मुख्तार जिल्द 1 सफा 37)

मोहतरम उलेमा–ए–अहनाफ! मेरी उलझन यह है कि जिस फिक्ह में गलती के इम्कान को हम खुद तसलीम करते है उसके किसी मसअले को रद्द करने या ना मानने पर यह वईद क्यों? कि ''अल्लाह की बेशुमार लअनते हो उस शख्स पर जो इमाम अबु हनीफा (रह.) कि किसी बात का रद्द करें। '' (दुर्रे मुख्तार जिल्द 2 सफा 48)

जबकि मुकदमा उम दतुर्राय जिल्द जिल्द 1 सफा 8 पर लिखा है कि ''साहिबेन–(काजी अबु युसुफ रह. और इमाम मोहम्मद रह.) ने एक तिहाई से ज्यादा मसाइल में अबु हनीफा रह. से इख्तलाफ किया है।'' क्या इस तरह यह लअनत ''साहिबेन'' पर नही पड़ेगी? जिनके तुफेल (जरिये) फिक्ह हनफी फली फूली और परवान चढ़ी। कही ऐसा तो नही है कि हमारी अजीम फिक्ह हनफी के किसी मुखालिफ ने इस तरह की बाते हमारी मुकद्दस फिक्ही कुतुब में दर्ज कर दी हो? इसलिए कि हमारी फिक्ह (हनफी) तो वह फिकह है ''जिस पर इमाम मेहदी अमल करेंगे और कयामत से कब्ल जब ईसा. अलैहि. नाज़िल होंगे तो वो भी (कुरआन और हदीस को छोड़कर) इसी हनफी मज़हब के मुताबिक फैसला करेंगे। (दुर्रे मुख्तार जिल्द 1 सफा 44)

या फिर इस लअनत के असली हकदार वो लोग है जो सही हदीस जान लेने के बावजूद अपनी फिक्ह से चिमटे रहते है। इसलिए कि इसी ''दुर्रे मुख्तार की जिल्द–1–सफा–51 पर इमामे आज़म रज़ि. का यह मशहूर कौल दर्ज है ''जब सही हदीस मिल जाए तो वो ही मेरा मजहब है।''

फिर जाने क्यों इमाम कर्खी रह. ने ''उसूले कर्खी'' में यह लिख दिया कि ''हर वह आयत या हदीस जो हमारे मजहब के खिलाफ हो उसकी तावील की जाएगी या उसे मनसूख समझा जाऐगा। ''इसी तरह उसूले ''शाशी'' में लिखा मिला कि ''अगर हदीस कयास के मुआफिक हो तो (हदीस पर) अमल जरूरी होगा और कयास (राय) के मुखालिफ हो तो हदीस को छोड़कर कयास पर अमल करना ज्यादा बेहतर होगा।'' इसी तरह सैय्यद अब्दुल रहीम लाजपुरी ने, तकलीदे शरई की जरूरत में लिखा ''इमाम की बात को हदीस के खिलाफ समझ कर तर्क कर देना और हदीस पर अमल करना सरआसर

गुमराही और अफरा–तफरी है।'' तो ऐनुल हिदाया(उर्दू तर्जुमा हिदाया) की जिल्द 1 सफा 110 पर है इमाम अबु हनीफा और साहिबेन का कौल सही हदीस के खिलाफ हो तो अपने अइम्मा के कौल पर अमल होगा।'' (हदीस पर नही) जबकि अल्लामा सुयुती रह. ने लिखा है कि ''मअरूफ उसूल की शर्ते पूरी करने वाली हदीस के हुज्जत होने का इन्कारी शख्स न सिर्फ ये कि काफिर है बल्कि कयामत के दिन उसका हशर यहूद व नसारा के साथ होगा।'' (मुफ्ताह अल. जन्नः फीअलएहतेजाज अल–सुन्नः) शामी (रद्दुल मुख्तार) की जिल्द 1 सफा 460 पर लिखा है कि ''जब अपने मजहब के खिलाफ सही हदीस मिल जाए तो उस हदीस पर अमल किया जाये।'' – शाह वली उल्लाह रह. ने फरमाया ''अगर यहुदियों का नमूना देखना चाहते हो तो उन बदतरीन उलेमा को देख लो जो दुनिया तलबी में मश्गूल है। जिनमें तकलीद की बीमारी घर कर गई है और जिन्होनें किताबों सुन्नत से मुँह मोड़ लिया है।'' (फोजुल कबीर) यहया बिन यहया तमीमी रह. का बयान है कि ''मैं ने अबु यूसुफ रह. की वफात के वक्त मैने उन्हें यह कहते सुना कि मैं ने जो फतवे दिये है उनमें जो किताबों सुन्नत के मुताबिक ना हो मैं उन सब से तोबा व रूजूअ करता हुं। (तजकिरतुल्हुफ्फाज–जिल्द 1 सफा 214)

अजीब उलझन है। मैं कम इल्म हनफी करू तो क्या करू? किसकी मानू? क्या सही क्या गलत? कुछ सुझाई नही देता। कभी–कभी तो शैतान दीने इस्लाम ही से बेजार करने लगता है। कभी सोचता हूँ काश मैंने कुरआन को समझ कर ही न पढ़ा होता कुतुब–ए–अहादीस का मुताअला न किया होता। काश मैं जाहिल होता। इसलिये कि जैसे–जैसे इल्म बढ़ा वैसे–वैसे उलझने और वसावस बढ़ते गये। शायद सच ही फरमाया था हमारे मौलवी साहब ने कि कुरआन और अहादीस को समझना तुम्हारा काम नही। क्या वाकई कुरआन सिर्फ फातिहाख्वानी और ईसाले सवाब के लिये ही नाजिल हुआ है? जब किताब ''अकाइद–उलेमा–ए–देवबन्द'' पढ़ी तो उसके सफा 219 पर लिखा देखा ''वह हिस्सा ऐ जमीन जो नबी सल्ल. के अअजा ऐ मुबारक को मस किये हुये है। अलल इतलाक अफजल है। यहाँ तक कि काबा और अर्श व कुर्सी से भी अफजल है।'' आज मालूम हुआ कि इस अकीदे की रोशनी में नआउजुबिल्लाह नबी सल्ल. अल्लाह से भी अफजल है और जब सफा 221 पर पहुँचा तो लिखा पाया ''हमारे नजदीक और हमारे मशायख के नजदीक आप सल्ल. अपनी कबरे मुबारका में जिन्दा है और आपकी जिन्दगी दुनिया की सी जिन्दगी है। यह जिन्दगी खास है। आप सल्ल. और शुहदा के साथ यह जिन्दगी बरजखी नही है। जो हासिल है तमाम मुसलमानों को'' और ''अल मलफूज'' की तीसरी जिल्द के सफा 273 पर ''आला हजरत'' (बरेलवी) का यह कौल नकल है– ''अम्बिया अल. को महज एक आन (पल) के लिये मौत तारी होती है। फिर उनको वैसी ही जिन्दगी अता फरमा दी जाती है। वह अपनी कब्रों में खाते–पीते है और नमाज पढ़ते है।'' बल्कि सैयद मोहम्मद जरकानी के हवाले से लिखते है – ''अम्बिया अलैहि. की कब्रों में उनकी बीवियां पैश की जाती है। और वह उनके साथ शबबाशी फरमाते है।'' इस रूदाद से और बातों के अलावा यह भी मालूम हुआ कि न सिर्फ अमबिया अल. जिन्दा है बल्कि आप तमाम की बीवियां भी जिन्दा है, वरना आप अलैहि. शबबाशी कैसे फरमाते ? अल्लाह ही जाने हमारे असलाफ में यह अकीदा कहाँ से अखज किया है ? कुरआन व सही अहादीस मै तो इसका सबूत कहीं नही मिलता अगर मिलता है तो यह कि ''कुल्लू नफसीन जाइकतूल मौत'' यानि हर नफ्स को मौत का मजा चखना है। (आले इमरान–आयत–185–अमबिया–35 और अन्कबूत 57) और खास नबी सल्ल. के बारे में फरमाया ''आप भी मरने वाले है और इन्हें भी मौत आनी है।'' (जुमर–आयत–30) और ''अगर उन्हे मौत आ जाए या वह मार दिये जायें।'' (आले इमरान–आयत–134) इसके अलावा यह कि आप सल्ल. की वफात के बाद और दफन से पहले हजरत अबु बकर सिद्दीक ने जो पहला खुतबा दिया तो उसमें फरमाया



''मोहम्मद सल्ल. मर(वफात, पा) चुके है।'' (बुखारी–1241–4454)

मुहतरम! उलैमा ए अहनाफ अब आप ही बतलाऐ कि क्या सच है ? और क्या झूठ? अल्लाह सच्चा या हमारे असलाफ? मै अपने बड़ों की मानू या अबु बकर रजि. की ? इस बारे में आखिर क्या अकीदा रखु मैं ? – मेरी परेशानी उस वक्त और बढ़ गई जब हमारे पीरों के पीर हाजी इम्दादुल्लाह साहब महाजिर मक्की का यह कौल पढ़ा – ''अल्लाह की मिसाल बीज की और मखलूक की मिसाल एक पेड़ की सी है पेड़ मय तमाम शाखो और पत्तों और फल और फूल के उसमें छुपा था।'' जब बीज ने अपने बातिन को जाहिर किया तो खुद छुप गया। जो कोई देखता है पेड़ को देखता है और बीज दिखाई नही देता।'' (शमाइमें इमदादिया सफा 35) आगे इसी किताब के सफा 37 पर लिखा है कि ''आबिद व मअबूद में फर्क करना शिर्क है।'' वहदतुल वुजूद का यह अकीदा कि ''कायनात के जर्रे–जर्रे में अल्लाह है।'' क्या अल्लाह के अपनी मखलूक से अलग अर्श पर मुस्तवी होने का इनकार नही है ? अल्लाह तआला तो फरमाता है ''अर्रहमानु अलल अर्शिस तवा'' यानि ''रहमान अर्श पर मुस्तवी है।'' (आराफ–54–यूनुस–3–रअद–2– ताहा–5–फुरकान –59–सज्दा–4–हदीद–4)

(तजकिरतुर्रशीद–जिल्द–2–सफा–17) पर लिखा है कि ''सुन लो हक वही है जो रशीद अहमद की जुबान से निकलता है और बा कसम कहता हूँ मैं कुछ नही हूँ मगर इस जमाने में निजात और हिदायत मोकूफ है मेरी इत्तेबाअ पर।'' क्या अब नबी सल्ल. की इत्तेबाअ मनसुख हो गई? अल्लाह तआला ने फरमाया ''ऐ इमान वालों अल्लाह और उसके रसूल से आगे न बढ़ों और अपनी आवाजों को नबी सल्ल. की अवाज पर बुलन्द न करों।'' (हुजूरात–आयत– 1,2) मुझे यकीन है– मुअज्जिज उलैमा ए अहनाफ अल्लाह और उसके रसूल सल्ल. से आगे बढ़ने का सोच भी नही सकते। न ही नबी सल्ल. की सही अहादीस के मुकाबले अपनी या किसी और की बात को तर्जीह दे सकते है। इसलिए की इमामे आजम रजि. की वसीयत कि ''जब सही हदीस मिल जाए तो वो ही मेरा मजहब है।'' और काजी अबु यूसुफ रह. का वफात से कब्ल का अमल (रूजुअ) हमेशा उनके सामने रहा है। ऐसा लगता है कि हमारे मुखालिफीन ने इस तरह की बाते हमारी मुकद्दस किताबों में मिला दी है ? चलते–चलते इतना और बतला दूँ कि छुट्टी पूरी कर सऊदी अरब लोटने से तीन–चार दिन पहले जब मैं मौलवी साहब के पास उनकी बैशकीमती किताबें लौटाने गया तो दौराने गुफ्तगू मैं ने पूछ लिया हजरत जब हम नबी सल्ल. लिखते या बोलते है तो ज्यादा से ज्यादा ''हजरत'' लफ्ज का इस्तेमाल करते है लेकिन इमामे बरेलवी के लिए ''आला हजरत और तबलीगी जमाअत के मर्कजी अमीर के लिए ''हजरत जी'' क्यों बोला या लिखा जाता है ? अगर अबु. हनीफा रह. इमामे आजम है तो नबी सल्ल. क्या है ? और मुक्तादाए खल्क अगर अबु हनीफा रह. है तो नबी सल्ल. किनके मुक्तदा है ? और क्या ''एहले सुन्नत'' होने के लिये किसी सिलसिला ऐ सूफिया से बैत होना जरूरी है ? कुरआन की तिलावत करने पर अल्लाह तआला हर हर्फ के बदले 10 नेकिया अता करता है तो हमारी फिक्ही किताबों के मुताअले पर रात–भर नवाफिल पढ़ने से ज्यादा सवाब कौन देता है ? और यह कि उन 72 उलूम के नाम क्या है ? जिन्हे जानने सीखने के बाद कुरआन–ए–करीम समझ में आता है। तो बजाए जवाब देकर मुझ कम इल्म को मुतमइन करने के वह बिफर पड़े और लाल–पीले होकर बोले ''तहकीक'' तुम बहक गये हो। गुमराह हो गये हो। सऊदी अरब से अपना ईमान खराब करके लोटे हो तुम। तुमने तो दुर्रे मुख्तार पढ़ी है क्या उसकी पहली जिल्द का सफा 51 नही पढ़ा ? जिसमें लिखा है ''एक इल्मी मजलिस इमाम साहब के यहाँ थी जिसमें मुहद्दिस, फकीह और एहले लुगत का मजमआ था। जब कोई मसला दर पेश होता तो उस मजलिस में उस पर बहस होती। बअज मरतबा एक–एक महीने तक बहस चलती। उसके बाद जब कोई बात तय हो जाती तो वह मजहब करार



दी जाती और काजी अबु यूसुफ रह. उसे लिख लेते थे– अल्लामा शिब्ली नोमानी के मुताबिक यह ''कानून साज कमेटी'' जिसके अरकान की तादाद 40 थी। 120 हिजरी में वजूद में आई।

तहकीक– तुम फिक्ह हनफी को ऐसी वैसी न समझों जरा सोचो जो फिक्ह 40 अकाबिर उलैमा ए उम्मत ने 30 साल की मशक्कत के बाद तैयार की हो उसकी क्या शान होगी ? मौलवी साहब की बाते अच्छी लगी और मै ने अपने नाम के मुताबिक इस कमेटी के अरकान के बारे में सऊदी अरब लौटकर तहकीक की तो पाया कि –

1. काजी अबु यूसुफ–113 हिजरी
2. मोहम्मद बिन हसन शौबानी–135
3. जुफर बिन हजील–110 हिजरी
4. यूसुफ बिन खालिद– 123 हिजरी
5. इमाम वकीअ़–128 हिजरी
6. यहया बिन जकरिया–120 हिजरी
7. हफ़्स बिन गयास–117 हिजरी
8. हुबान– 110 हिजरी
9. मुन्दल – 103 हिजरी
10. हमजा जियात बिन जकरिया – 80 हिजरी
11. फजिल बिन अयाज– 107 हिजरी
12. हसन बिन जियाद– 116 हिजरी
13. हकम बिन अब्दुल्ला– 115 हिजरी
14. शोयेब बिन इसहाक– 118 हिजरी
15. अब्दुल्लाह बिन इदरीस– 115 हिजरी
16. अ. हमीद बिन अ. रहमान– 120 हिजरी
17. अली बिन मुसहर–120 हिजरी
18. फजल बिन मुसा–115 हिजरी
19. मक्की बिन इब्राहीम– 126 हिजरी
20. हिशाम बिन यूसुफ– 120 हिजरी
21. हशीम बिन बशीर– 105 हिजरी
22. हफ़्स बिन अ. रहमान–119 हिजरी
23. खालिद बिन सुलेमान– 115 हिजरी
24. दहाक बिन मुखल्लिद– 122 हिजरी
25. अब्दुल्लाह बिन मुबारक– 119 हिजरी
26. असवद बिन अम्र– पता नही
27. नूह बिन अबि मरमय– पता नही
28. आफिया अजदी – पता नही
29. कासिम बिन मुअन– पता नही
30. हमाद बिन अबी हनीफा– पता नही
31. जहीर बिन मुआविया– पता नही
32. दाउद ताई– पता नही
33. हमाद बिन दलील– पता नही
34. काजी शरीक कूफी– पती नही
35. अली बिन जूबियान– पता नही
36. उमर बिन मेमून– पता नही
37. मालिक बिन मुग़ल– पता नही
38. नसर बिन अब्दुल करीम– पता नही
39. नूह बिन दराज– पता नही
40. हियाज बिन मुसताम– पता नही।

इस कमेटी के 40 मे से 15 मेम्बरों की कब पैदाइश हुई ? पता नही बचे 25 में से 2–3 को छोड़कर बाकी या तो कमसिन बच्चे थे या पैदा ही नही हुये थे। उस वक्त जब यह कानून साज कमेटी तशकील दी गयी थी। बहरहाल दुश्मने अहनाफ चाहे जो कहें मुझे तो यह इमामे आजम और उनके साथियों और ाागिर्दों की करामत ही लगती है। मगर दुखः की बात यह है कि हमारे अकाबरीन ने भी शायद अपने मजहब से लापरवाही बरती जिसकी वजह से इन 40 जलिलुल कद्र उलैमाकिराम की 30 सालों की मेहनत से जो अजीम फिक्ह मुदव्वन हुयी थी। आज उस का वजूद दुनिया में कहीं नहीं पाया जाता। अगर उस नुस्खे को सम्भाल कर रखा जाता तो आज दुश्माने अहनाफ को हमारे मजहब पर यूं अुंगली उठाने का मौका न मिलता। आखिर में उलैमा ए अहनाफ से यही इल्तेजा है कि वो ऐसे काम और कोशिशें करें कि अहनाफ की तादाद में दिन दूनी रात चौगूनी बढ़ोतरी हो। ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग इमामे आजम की उन 2 रकअतों के तुफैल बख्श दिये जाये चाहे इसके लिये कुरआन और अहादीसें सही हा का रद्द ही क्यों न करना पढ़ें।

फकत
तहकीकुल इस्लाम
पो. भिरा बाजार
जिला आजमगढ़